नियमसार, २५० कलश है।

स्ववशयोगि-निकायविशेषक-प्रहतचारुवधूकनकस्पृह।
त्वमसि नश्शरणं भवकानने स्मरकिरातशरक्षतचेतसाम्।।२५०।।

श्लोकार्थ : जिसने सुन्दर स्त्री और सुवर्ण की स्पृहा को नष्ट किया है... क्या कहते हैं ? जिसने सुन्दर स्त्री और सुन्दर सुवर्ण। जो परवस्तु है, उसे जिसने अन्तर से छोड़ दी तो उससे नीचे की चीज़ों की तो बात क्या करना ? अन्दर में आत्मा का ज्ञान करके, सच्चिदानन्द प्रभु सत् चिदानन्द सत् कायम रहनेवाले, ऐसे आनन्द और ज्ञान का सागर, उसकी दृष्टि-अनुभव करके, जिसने सुन्दर स्त्री और सुन्दर सुवर्ण की स्पृहा छोड़ी है। आहाहा! तो जिसने यह स्पृहा छोड़ी है तो दूसरी साधारण चीज़ तो छोड़ी है। है ?

जिसने सुन्दर स्त्री और सुवर्ण की स्पृहा... स्पृहा-इच्छा। आहाहा! सुन्दर आनन्दकन्द प्रभु! अन्तर में अनन्त काल से आत्मा का ज्ञान नहीं किया। बाकी दूसरा कर-करके मर गया। करोड़पति हुआ, अरबोंपति हुआ, मरकर नरक में, ढोर में-पशु में गया। आहाहा! आत्मा क्या चीज़ है और उसकी कीमत क्या है और उसके समक्ष दूसरी चीज़ की कीमत नहीं है, ऐसी अन्तर में दृष्टि और अनुभव किया नहीं तो उसे चार गति का परिभ्रमण मिटा नहीं। चार गति का परिभ्रमण करता है।

यह दो ऊँचे नाम दिये, ऐसा क्यों ? सुन्दर स्त्री और सुन्दर सुवर्ण। आहाहा! तो दूसरी चीज़ की तो बात ही क्या करनी ? कोई चीज़ ही अपनी नहीं है। अपनी चीज़ में तो ज्ञान और आनन्द भरा है। चैतन्य आनन्द और ज्ञान का सागर-समुद्र अन्दर भरा है। उस अपनी चीज़ को छोड़कर दूसरी कोई चीज़ अपनी नहीं है। आहाहा! ऐसी प्रथम अनुभव-दृष्टि किये बिना धर्म की शुरुआत नहीं होती। अपना आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है— ऐसी दृष्टि किये बिना और अनुभव किये बिना दूसरी चीज़ छोड़ दे तो भी कल्याण नहीं होता। दूसरी चीज़ अनन्त बार छोड़ी और अनन्त बार द्रव्यलिंग धारण किया, अनन्त बार जैन दिगम्बर साधु हुआ, परन्तु आत्मज्ञान, आत्मा क्या चीज़ है, अन्तर चीज़ में क्या-क्या स्वभाव है और उस स्वभाव की मर्यादा कितनी है, उसका कभी अनुभव किया नहीं।

चिदानन्द भगवान आत्मा ज्ञान का पुंज, आनन्द का सागर, गुण का गोदाम, शक्ति का सागर ऐसा समुद्र भरा समुद्र आत्मा है। अरे रे! कहाँ खोजने जाना ? इसकी नजर में जब तक पर के प्रति महिमा रहेगी, तब तक अपने स्वभाव में इसका झुकाव नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। जब तक अपने अतिरिक्त दूसरी चीज़ में विशेषता, अधिकता, विस्मयता, मिठास पर में रहेगी, तब तक आत्मा की मिठास और आत्मा का ज्ञान नहीं होता और

आत्मा का ज्ञान नहीं होता तो चार गति में भटकता है। आहाहा! किसे पड़ी है? उसमें करोड़ों रुपये के अरबों रुपये हो जाए। हो गया, मर गया उसमें। आहाहा!

वहाँ गये न? नैरोबी में। नैरोबी में साढ़े चार सौ तो करोड़पति हैं। साढ़े चार सौ! अब उन्हें धर्म की यह बात (कहना)! आहाहा! किसे धर्म कहाँ है? यह शरीर, वाणी, स्त्री, पुत्र संभालने का। आत्मा का मरण किया है। जो (अपनी) चीज़ है, उसका निषेध करके, जो चीज़ अपनी नहीं, उसका स्वीकार किया है। अपनी चीज़ का नकार किया तो मरण किया। आहाहा! आत्मा का तो मरण कर डाला।

यहाँ यह कहते हैं, **जिसने सुन्दर स्त्री और सुवर्ण की स्पृहा...** स्पृहा, हों! चीज़ तो ठीक। चीज़ तो छूटी हुई ही है, परन्तु उसकी स्पृहा, भावना जिसने छोड़ी है। **ऐसे हे योगीसमूह में श्रेष्ठ...** योगी समूह में। योगी अर्थात् आत्मा। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप में योग जोड़ना, वह योगी है। बाकी यह योगी बाबा नाम धराते हैं, वे योगी-फोगी हैं नहीं। अन्तर आनन्दस्वरूप में आत्मा को जोड़ना, वह योगी है। पुण्य और पाप का क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रतादि क्रियाकाण्ड, वह तो राग है। वह कोई धर्म नहीं है और वह कोई जन्म-मरण का अन्त लानेवाली चीज़ नहीं है। आहाहा! एक तो जवान शरीर हो, उसमें पाँच-पचास करोड़, लाख मिले हों, उसमें स्त्री अनुकूल हो, लड़के दो-चार अच्छे हुए हों, उसमें घुस गया। उसमें मर गया। मानों मैं तो... आहाहा! यह सब चीज़। यह चीज़ तेरी स्वप्न में नहीं है। उस चीज़ को जागृत में अपनी मानी। आहाहा! परन्तु अपनी चीज़ की जिसने सँभाल नहीं की।

कहते हैं **हे योगीसमूह में श्रेष्ठ स्ववश योगी!** तूने तो आत्मा को स्ववश किया। आत्मा में स्ववश—स्व के आधीन हुआ। परपदार्थ की सब आधीनता छोड़ दी। आहाहा! **हे योगी! तू हमारा—कामदेवरूपी भील के तीर से घायल...** आहाहा! किसी-किसी समय पाँच इन्द्रिय के विषयों में कोई जरा राग आवे तो घायल हो जाए। जैसे शरीर में छुरी का घाव मारे, छुरा-छुरा। वैसे राग और द्वेष करता है तो आत्मा के शरीर में चोट पड़ती है। ... निज स्वभाव में जाना पड़ेगा। समझ में आया? आहाहा! यह २५०।

तू हमारा—हे योगी! तूने जो आत्मा को वश किया और पर का वशपना छोड़ दिया, **कामदेवरूपी भील के तीर से...** कामदेव की चोट लगती है। आहाहा! आचार्य तो यहाँ

तक कहते हैं कि अरे रे! मैंने अनन्त भव किये। आज से पहले अनन्त-अनन्त काल... मैं तो आत्मा हूँ। अनन्त भव किये। उन भवों को मैं याद करता हूँ और उन भव के दु:खों को मैं याद करता हूँ तो चोट लगती है। आहाहा! इसी पहले के भव का स्मरण करता हूँ कि यह भव किया... यह भव किया... यह भव किया... अनन्त-अनन्त भव किये। आत्मा तो नित्यानन्द अनादि-अनन्त है, उसकी कोई उत्पत्ति नहीं और नाश नहीं होता। आत्मा तो अनादि का है, तो उसमें वह रहा कहाँ? वह भवभ्रमण में रहा, तो कहते हैं कि उस भवभ्रमण को याद करता हूँ तो चोट लगती है। आहाहा! किसी समय में तो करोड़पति सेठ हुआ तो भी चोट लगती है। वह करोड़पति और धूलपति... आहाहा! उस धूल का धनी है। आत्मा का धनी नहीं। आहाहा! वह चार गति में भटकनेवाला है।

जिसे काम, स्त्री और सोना इनकी गहरे स्पृहा रही, वह चार गति में भटकनेवाला है। वह पशु और ढोर में, गाय और भैंस में जन्म लेगा। आहाहा! देह तो छूटेगी, देह की तो अवधि है। आत्मा का नाश नहीं होगा, तो देह छूटकर आत्मा जाएगा कहाँ? कहीं रहेगा तो अवश्य। यह सब पाप के भाव किये होंगे तो उस प्रमाण के फल में पशु में या ढोर में अथवा नरक में (जाएगा)। आहाहा! उस गत भव को याद करते हैं, मुनि कहते हैं... आहाहा! कहाँ रहा? किस-किस भव में कितना दु:ख सहन किया! अरे रे! मैं तो अनन्त काल से परिभ्रमण में दु:खी हुआ। उस दु:ख को याद करने पर चोट लगती है। आहाहा! यह विचार करने का अवकाश भी कहाँ है? मैं अभी तक कहाँ रहा? कितने भव किये? उसमें दु:खी कहाँ हुआ? किस प्रकार दु:खी हुआ? यह विचार करने का अवकाश कहाँ है? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, हे योगी! जिसने काम, स्त्री और सोना आदि की स्पृहा छोड़कर भगवान आत्मा का आश्रय लिया, वही स्ववश योगी है। वह परवश नहीं है। हे **स्ववश योगी! तू हमारा—कामदेवरूपी भील के तीर से घायल चित्तवाले का—भवरूपी अरण्य में शरण है।** अर्थात् कि उसे छोड़कर आत्मा में जाना, वह शरण है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। यह २५०, २५१। उसमें कहा न, भवरूपी अरण्य में शरण है। भवरूपी अरण्य - अरण्य-वन। आहाहा! चौरासी लाख के अवतार, एक-एक योनि में अनन्त अवतार किये। चौरासी लाख योनि में एक-एक योनि में अनन्त अवतार! यहाँ कोई पाँच-पचास लाख मिले और कोई शरीर ठीक मिला, वहाँ तो मानो ओहोहो! हम क्या हैं और हमारे क्या हो गया!

यहाँ कहते हैं हे योगी! जिसने आत्मा को वश किया, वही हमारा शरण है। दूसरा कोई शरण नहीं है। आहाहा! अरिहंता शरणम्, सिद्धा शरणम्... यह आता है परन्तु इस आत्मा को वश किया, वह शरण है। अपने आत्मा को वश करना, वह शरण है। आहाहा!

श्लोक-२५१

(द्रुतविलंबित)

अनशनादितपश्चरणैः फलं तनुविशोषणमेव न चापरम्।
तव पदाम्बुरुहद्वयचिन्तया स्ववश जन्म सदा सफलं मम।।२५१।।

(वीरछन्द)

अनशनादि तप का फल केवल इस शरीर का है शोषण।
अहो! स्ववश मुनि चरण-युगल के चिन्तन से मम जन्म सफल॥२५१॥

[श्लोकार्थः] अनशनादि तपश्चरणों का फल शरीर का शोषण (-सूखना) ही है, दूसरा नहीं है। (परन्तु) हे स्ववश! (हे आत्मवश मुनि!) तेरे चरणकमल-युगल के चिन्तन से मेरा जन्म सदा सफल है॥२५१॥

श्लोक - २५१ पर प्रवचन

२५१ (श्लोक)

अनशनादितपश्चरणैः फलं तनुविशोषणमेव न चापरम्।
तव पदाम्बुरुहद्वयचिन्तया स्ववश जन्म सदा सफलं मम।।२५१।।

अरे रे! अनशन किये, आहार छोड़ा, दो-चार-छह महीने तक आहार नहीं लिया, पानी नहीं लिया, शरीर से आजीवन ब्रह्मचर्य पालन किया। वह शरीर से ब्रह्मचर्य पालन किया, वह कोई धर्म नहीं है, वह तो शुभभाव है। जड़ शरीर का काम नहीं हुआ परन्तु आत्मा में ब्रह्म अर्थात् आनन्द में आया नहीं। ब्रह्मचर्य—ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्द। उस

आनन्द में चरना, रमना हुआ नहीं, तब तक ब्रह्मचर्य भी नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं अनशन किये, ऊनोदर किया, रसत्याग किया, वैयावृत्त्य किया, उपवासादि किये, अनशन, ऊनोदर, रसपरित्याग, कायक्लेश। कायक्लेश किया। शरीर को ऐसे कायोत्सर्ग में रहना, हिलना नहीं, चलना नहीं। और विनय भी किया, स्वाध्याय किया। अशुभभाव छोड़कर शुभ का ध्यान भी किया परन्तु वह तपश्चरणादि... आहाहा! उसका फल शरीर का शोषण है। आहाहा! वह अनशन, ऊनोदर, भक्ति, पूजा और भक्ति-वन्दन... आहाहा! रस का त्याग, वह सब शरीर का शोषण है। आत्मा में नुकसान है, आत्मा को लाभ नहीं। कठिन बात है, भगवान।

अरे! किसने विचार किया? निमित्त आया तो यह देह जड़ पड़ जाएगी। आहाहा! देखो न! वह लड़की बेचारी गिरकर मर गयी। यह स्थिति ही इतनी थी। उसकी अवधि इतनी उस समय में उस अनुसार होना था। ऐसे यह शरीर छोड़ने की अवधि जिस समय है, वह समय आनेवाला है। जितने-जितने दिन और महीने जाते हैं, उतना-उतना मृत्यु के समीप जाता है। आहाहा! क्या किया और मैं क्या करूँगा? इसका विचार भी नहीं करता।

यहाँ कहते हैं कि **अनशनादि...** किये। बारह प्रकार के तप किये। उसका **फल शरीर का शोषण (-सूखना) ही है,...** आत्मा को कुछ लाभ नहीं। आहाहा! है? भाई! अन्दर है? आहार का त्याग, अनशन का त्याग, रस का त्याग, वह शरीर का शोषण है। उसमें आत्मा को कुछ लाभ नहीं। आहाहा! यहाँ तो जरा दो रस त्याग करे वहाँ तो... आहाहा! हमें गन्ने का रस चलता नहीं। आम का रस चलता नहीं, मेरे त्याग है। उसमें - धूल में क्या है? आत्मा का रस आये बिना, अतीन्द्रिय आनन्द का रस आये बिना पर के त्याग का रस, वह शरीर का शोषण है। आत्मा को किंचित् लाभ नहीं है। आहाहा!

अनशन, ऊनोदर। दो ग्रास लेना, बाद में नहीं, ऐसा भी अनन्त बार किया। अनशन-अपवास किये, रसपरित्याग, कायक्लेश, प्रायश्चित्त लिया। पाप किया तो प्रायश्चित्त लिया। देव-गुरु-शास्त्र का विनय किया। आहाहा! शास्त्र की सज्झाय की। सज्झाय, विनय, वैयावृत्त्य, वैयावृत्त्य, सज्झाय, ध्यान। मैंने शुभ का ध्यान किया। शुभ का, हों! शुद्ध का नहीं। अशुभ छोड़कर शुभ में रहा, वह ध्यान। आहाहा! कायोत्सर्ग किया। काया छोड़कर अन्दर विचार में रहा परन्तु अन्तर में आत्मज्ञान नहीं किया। अन्तर में भगवान

सच्चिदानन्द प्रभु, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द सर्वांग भरपूर भरा है, जिसमें अतीन्द्रिय ज्ञान भरपूर पड़ा है, उस ओर दृष्टि नहीं की तो यह अनशन और यह सब शरीर का शोषण है। उसमें कहीं आत्मा को लाभ नहीं परन्तु नुकसान है। आहाहा! यहाँ तो (बाहर में ऐसा कहते हैं), अपवास करो और यह करो और यह करो, रस छोड़ो। दुनिया से उल्टा है, भाई!

एक तो एक तत्त्व दूसरे तत्त्व का कुछ नहीं कर सकता, यह बात जँचती नहीं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का (कुछ नहीं करता), क्योंकि दूसरा भी पदार्थ है और पदार्थ है तो अपने परिणामसहित पदार्थ है, तो परिणामसहित पदार्थ है तो वह दूसरे पदार्थ का करे क्या? आहाहा! शरीर भी परिणाम से परिणमता है। उसमें आत्मा क्या करे? आहाहा! परपदार्थ परिणाम पर्याय से परिणमता है। उसमें दूसरा पदार्थ-आत्मा कुछ नहीं कर सकता। परन्तु अनशन, ऊनोदर आदि किये, उसका भी कुछ फल नहीं। आहाहा!

अरे! देह तो छूटेगी। देह तो उसकी अवधि है, उसमें कोई फेरफार इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र से भी फेरफार नहीं होता। जिस समय में, जिस क्षेत्र में, जिस संयोग में, जिस जगह देह छूटेगी वह छूटेगी। आगे-पीछे नहीं। वह लड़की जहाँ से गिरी थी, वह स्थिति ही ऐसी थी। अकस्मात् कुछ नहीं है। आहाहा! वही स्थिति देह छूटने की थी। आहाहा! यहाँ अभी नहीं तीन-चार-पाँच दिन पहले? भाईलालभाई, यहाँ बैठे थे। अब यहाँ जाते थे। चलते थे। वहाँ कुर्सी पर बैठे थे। बैठे वहाँ ऐसा (हो गया)। मेरी नजर ऐसे गयी। ऐसा हो गया। कहा, यह हुआ क्या भाईलालभाई को? हार्ट अटैक आया। हार्ट का अटैक आया। आहाहा! यहाँ कुर्सी पर बैठे थे। उनके दामाद आये थे तो उनसे मिलने यहाँ से गये। वहाँ से आकर यहाँ बैठे। बैठने के बाद एकदम अटैक आया। आहाहा! हार्ट का अटैक-हमला, हार्टफेल। हार्टफेल हो गया। बाहर ले गये। देह छूट गयी। आहाहा! नरेन्द्र, इन्द्र, जिनेन्द्र क्या करे? जिस समय में जिस पदार्थ की जो अवस्था पर्याय होनेवाली है, वह होती है और होती है, उसमें कोई दूसरा कर सके या रोक सके, ऐसा है नहीं।

यहाँ कहते हैं कि अनशनादि क्रिया... आहाहा! उसका फल तो शरीर का शोषण है, दूसरा नहीं। आहार छोड़े, अनशन करने से आत्मा को लाभ हो, तेरे जन्म-मरण घटें, ऐसा तीन काल में नहीं है। वह तो सब लंघन है। लंघन-लंघन। आहाहा! आत्मा के आनन्दस्वरूप के अनुभव बिना सब लंघन है। आहाहा! ऐसा है, प्रभु! तेरी प्रभुता बहुत है,

प्रभुनाथ! अन्दर में प्रभुता अनन्त है परन्तु वह प्रभुता कभी सुनी नहीं, उस प्रभुता की ओर नजर नहीं की और जो उसमें है नहीं, उसकी कीमत और उसकी महत्ता और प्रभुता दी। अपने अतिरिक्त परचीज़ को महत्ता दी। पैसे को महत्ता दी, दो-पाँच करोड़ रुपये हो गये और उसमें... आहाहा! हम मानो बड़े सेठ हो गये। सेठिया हो गये हेठिया। नीचे उतर गया है। नीचे चला जाएगा, इसकी खबर नहीं। आहाहा! पैसा तो बहुत है। कहा न?

हम अभी नैरोबी गये थे न, २६ दिन रहे। अफ्रीका गये थे। वहाँ साढ़े चार सौ तो करोड़पति हैं। साढ़े चार सौ करोड़पति और पन्द्रह अरबपति। परन्तु सब भिखारी। आहाहा! पर को माँगे, यह लाओ... यह लाओ... सब भिखारी हैं। भगवान (उसे) भिखारी, वरांका कहते हैं। अपनी लक्ष्मी को छोड़कर, अपने में आनन्द और ज्ञान-शान्ति है, उस लक्ष्मी को छोड़कर परलक्ष्मी की स्पृहा करता है, वह भिखारी है। भिखारी है, भिखारी। दुनिया उसे बड़ा सेठ कहती है। बड़ा सेठ और अमलदार और अधिकारी... पाँच-दस हजार वेतन, पन्द्रह हजार का वेतन हो तो (मानो क्या हो गया)। आहाहा!

अपनी चीज़ आनन्दकन्द प्रभु के अतिरिक्त दूसरी किसी भी चीज़ की स्पृहा होना, माँगना, वह भिखारी है। शास्त्र में वरांका शब्द है। वह भिखारी-भिखारी है। अरबपति, वह भिखारी है। अरब तो पैसा जड़ है, धूल है। वह तेरे हैं नहीं। तेरे पास लक्ष्मी है, उसकी तो तुझे खबर नहीं। आहाहा! अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय वीर्य, अतीन्द्रिय शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... पूर्ण अतीन्द्रिय अनन्त शान्ति का भण्डार भगवान है। कषाय का अभाव है, शान्ति का सागर आत्मा है। उसकी तो कीमत और महिमा कभी की नहीं। उसकी महिमा कभी की नहीं और पर को महिमा दी। आहाहा! जहाँ पाँच हजार का, दस हजार का, पन्द्रह हजार का वेतन हो, वहाँ मानो बड़े हो गये। धूल के बड़े हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **अनशनादि तपश्चरणों का फल शरीर का शोषण (-सूखना) ही है, दूसरा नहीं है। (परन्तु) हे स्ववश!..** आहाहा! परन्तु भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सर्वांग सागर भरा है। उस ओर नजर करके उसके वश होता है। हे स्ववश! आहाहा! हे आत्मवश मुनि! वह आत्मवश, स्ववश है। बाहर में भिखारी हो, (खाने को) ग्रास नहीं मिले, रहने का मकान न हो, झोंपड़ा भले न हो, शरीर एकदम काला हो, शरीर

में रोग हो परन्तु अन्दर यदि आत्मा का भान हुआ है तो आत्मवश है-स्ववश है, परवश नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **हे स्ववश! (हे आत्मवश मुनि!) तेरे चरणकमल-युगल के...** आहाहा! मुनिराज अपनी बात करते हैं। हे मुनि स्ववश! तेरे चरणकमल की सेवा से मैं आत्मवश हुआ हूँ। मैं आत्मवश हुआ हूँ। आहाहा! स्ववश हुआ हूँ। है ? **चरणकमल-युगल के चिन्तन से मेरा जन्म सदा सफल है।** ओहोहो! पंचम काल के मुनि हजार वर्ष पहले (यह बात कहते हैं)। भगवान की अस्ति नहीं। परमात्मा विराजते हैं-महाविदेह में भगवान विराजते हैं। यहाँ ये मुनि अपना अनुभव करके, आनन्द का अनुभव करते-करते (कहते हैं), हे आत्मा! आहाहा! मेरा जन्म सदा सफल हुआ। मैंने मेरे आत्मा को वश किया तो मेरा जन्म सफल हुआ। आहाहा! पैसा-बैसा इकट्ठा किया, इज्जत बड़ी हुई, एल.एल.बी. और एम.ए. का पुछल्ला लगा दिया। इस वकील को एल.एल.बी. का पुछल्ला होता है। डॉक्टर को एम.ए. हो, उसमें क्या है ? सब भिखारी हैं। आहाहा! अपने अन्दर जो चीज़ पड़ी है, वह कोई करोड़ों-अरबों कीमत देने से नहीं मिलती। बाहर की चीज़ तो साधारण (पुण्य से) मिलती है। आहाहा! अपनी चीज़ तो अरबों रुपयों से भी नहीं मिलती परन्तु अन्तर में ध्यान और एकाग्रता से मिलती है। आहाहा!

हे स्ववश! ऐसा आत्मा जिसने वश किया... आहाहा! **मेरा जन्म सदा सफल है।** आहाहा! पंचम काल के प्राणी कहते हैं। आहाहा! अन्तर में आनन्द का अनुभव हुआ। राग और द्वेष के विकल्प से पार जन्म-मरण करने के भाव का अभाव हुआ और जिसमें जन्म-मरण का भाव नहीं, ऐसे आनन्द का अनुभव हुआ तो जन्म सफल हुआ। बाकी जन्म अफल है। आहाहा! चक्रवर्ती का पद मिले तो भी जन्म अफल है। ब्रह्मदत्त, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती। छियानवें हजार स्त्रियाँ... आहाहा! छियानवें करोड़ सैनिक (थे), मरकर सातवें नरक में गया। नीचे तैंतीस सागर। गजब, प्रभु! उस दुःख का वर्णन परमात्मा करते हैं। नरक के दुःख का वर्णन प्रभु करते हैं। आहाहा! करोड़ों भव में और करोड़ों जीभों से न कहा जा सके, ऐसा दुःख नरक में है। वहाँ अनन्त बार गया और अभी अनन्त बार जाएगा, जब तक आत्मध्यान नहीं करे। आत्मवश सम्यग्दर्शन। दूसरी वस्तु बाद में। सम्यग्दर्शन बिना चारित्र-वारित्र नहीं होता, मुनिपना नहीं होता। आहाहा! मुनिपने बिना मुक्ति नहीं

होती। मुनिपने बिना मुक्ति नहीं होती और मुनिपना सम्यक्त्व के बिना नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? अलग प्रकार है, भाई!

बाहर में सफाई (रखे)। यह कपड़े पहने और यह हो और कपड़े ऐसे करे। अभी तो रखते हैं... क्या कहलाता है वह? कंघा? वह ऐसे सवेरे उठकर (बाल सँवारे)। पहले ऐसा नहीं था। पचास वर्ष पहले यह नहीं था। अब यह कंघा रखते हैं। उसे रास्ते में भी ऐसे-ऐसे करते हैं। आहाहा! प्रभु! क्या करता है? यह किसकी सम्हाल करता है? सम्हाल करता है, परन्तु वह तेरी चीज़ रहेगी? आहाहा! वह बाल है, उसे हाथ स्पर्श नहीं करता। हाथ भी बाल को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! बाल निकलते हैं, वह भी उनकी पर्याय की योग्यता से बाहर निकलते हैं। उसमें भी मानना कि मैं बाल निकालता हूँ, मैं लोंच करता हूँ। आहाहा! लोग इकट्ठे हों, ऐसा कहते हैं। क्या है? काया कष्ट है। आहाहा! अपना आत्मा राग के विकल्प और शरीर की क्रिया से अत्यन्त भिन्न है। ऐसे भिन्न आत्मा के ज्ञान और भान बिना जन्म सफल नहीं होगा। यह कहा न?

मेरा जन्म सदा सफल है। हे मुनिराज! आपने कृपा करके उपदेश दिया। उपदेश दिया, उसका उपकार मानते हैं। आहाहा! है? **(हे आत्मवश मुनि!) तेरे चरणकमल-युगल के चिन्तन से...** अर्थात् अन्दर आत्मा के चिन्तन से **मेरा जन्म सदा सफल है।** आहाहा! अब मुझे एक-दो भव हो तो हो, हम तो मोक्ष में जाएँगे। आहाहा! हमारे संसार का अन्त है। ऐसी अन्तर की दृष्टि का अनुभव हो, तब आत्मा में ऐसा विश्वास हो जाता है कि मैं तो एक-दो भव में पूर्ण हो जाऊँगा। मेरी मुक्ति है। मेरी मुक्ति तो है परन्तु हे भगवान आत्माओं! ऐसा कहते हैं, तुम सब भी आठ कर्मों का नाश करके परमात्मा हो जाओ न, नाथ! इसमें क्या है?

द्रव्यसंग्रह में कहा। द्रव्यसंग्रह है न? उसमें ऐसा लिया है। अवायवीचार में। अवायवीचार में आहाहा! धर्मी ने अपने संसार का अन्त किया है तो विचार करता है कि मैं तो एक-दो भव में आठ कर्म से रहित हो जाऊँगा परन्तु मैं तो ऐसा विचार करता हूँ कि सब प्राणी, सब जीव... आहाहा! अपनी शरण लेकर आठ कर्म का नाश कर दो, नाथ! इसके बिना तुम्हें सुख नहीं मिलेगा। दुनिया के दुःख की वेदना सहन करना कठिन पड़ेगी, प्रभु! आहाहा!

एक महिला थी। कहा नहीं? अठारह वर्ष की जवान महिला थी। दो वर्ष का विवाह। उसके पति की दूसरी थी। इसमें उसे शीतला निकली। शीतला को क्या कहते हैं? शीतला। छिद्र-छिद्र में जीव, कीड़े पड़ गये। छिद्र-छिद्र में कीड़े पड़े। अभी हमने देखा। लाठी में है। फिर अठारह वर्ष की उम्र। गद्दे में सो रही थी। ऐसे घूमे तो जीव-कीड़े निकलें, ऐसे घूमे तो ऐसे निकले। ऐसा बोली, माँ! मैंने ऐसे पाप इस भव में किये नहीं। मुझसे सहन नहीं होता। ऐसा बोली। वहाँ लाठी में है। अभी बना है। अठारह वर्ष की लड़की थी। दो वर्ष का विवाह। आहाहा! ऐसे कीड़े। दाने-दाने में कीड़े, ईयल। ईयल कहते हैं न? आहाहा! ऐसे जहाँ गद्दे में घूमे (करवट ले) वहाँ कीड़े गिरें और ऐसे घूमे तो ऐसे पड़ें। अन्दर सहन हो नहीं। पूरे शरीर में अन्दर कीड़े भटका भरे। ओहोहो! ऐसा वेदन प्रत्येक प्राणी ने अनन्त बार किया है। भूल गया है। अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... वहाँ आदि नहीं। प्रभु! ऐसे अनन्त भव तूने किये हैं। अब उस भव का अभाव करना हो तो नाथ! आत्मा को वश कर ले। अन्दर अखण्डानन्द प्रभु ज्ञान का सागर, आनन्द का समुद्र भरा है, उसका स्पर्श करके अनुभव कर। आहाहा! तो जन्म-मरण मिटेंगे। आहाहा! इसके बिना जन्म-मरण नहीं मिटेंगे। आहाहा! ऐसी बात! अब बाहर में जहाँ दुकान पर जाए। दो-पाँच करोड़पति हो तो नौकर (कहे), पधारो साहेब... पधारो साहेब... पधारो साहेब...। ऐसे गद्दे और तकिया पर बैठे। प्याला फट जाए (अभिमान चढ़ जाए)। अरे रे! प्रभु! तूने क्या किया? तूने यह सब उपाधि-दुःख ओढ़ लिया है। अपना आनन्दस्वरूप भगवान अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, सत् चिदानन्द। सत्—है, चिद्—ज्ञान और आनन्द। सत् चिदानन्द प्रभु आत्मा अन्दर है, उस ओर तेरी नजर नहीं है। उस ओर तेरा विश्वास नहीं है, उस ओर तेरा झुकाव नहीं है। आहाहा! उस ओर तेरा ढलान नहीं है और बाहर के झुकाव और ढलान में तू मर गया है। आहाहा! यह कहते हैं।

हे स्ववश! मुनि हमें गुरु मिले। गुरु ने ऐसा कहा कि आत्मवश हो जा, ऐसा कहा और आत्मवश हुए। उन मुनि का उपकार मानते हैं। **तेरे चरणकमल-युगल के चिन्तन से...** आहाहा! तेरे चरणकमल-युगल के चिन्तन से। आहाहा! पैर का चिन्तन करते थे? आहाहा! आपके दर्शन-चारित्र-आनन्द अन्दर थे, उनके चिन्तन से हमको भी आनन्द और दर्शन हुए। हमारा जन्म सफल हुआ। अभी तक अनन्त भव में राजा अनन्त बार हुए,

अरबोंपति अनन्त बार हुआ परन्तु भिखारी की भाँति भीख माँगता था। लाओ... लाओ... लाओ... लाओ... पैसा लाओ.. पैसा लाओ...

एक बार यहाँ राजा आये थे न ? व्याख्यान में। भावनगर दरबार। करोड़ रुपये का तालुका। आवे, राजा तो सर्वत्र जहाँ जाएँ वहाँ सब आते हैं। जिस गाँव में जाएँ, वहाँ के राजा एक बार तो आते हैं। लखतर, वढ़वाण, जहाँ जाएँ वहाँ। राजकोट, पोरबन्दर, जामनगर वहाँ तो उनका लड़का आया था परन्तु यहाँ। वह गुजर गया। एक करोड़ रुपये की आमदनी। दरबार को कहा, दरबार! एक महीने में दो लाख माँगे, वह छोटा भिखारी है, पाँच लाख और करोड़ माँगे, वह बड़ा भिखारी-बड़ा भिखारी है। हाँ महाराज! कहे। हमें कहाँ उसके पास से कुछ लेना था ? व्याख्यान में आया था। दो-तीन बार आया था। भावनगर का दरबार। उसकी एक वर्ष की एक करोड़ रुपये की आमदनी है। बड़ा भिखारी, कहा। करोड़ रुपये माँगते हो, माँगण, माँगण है। माँगता है, लाओ... लाओ... लाओ... लाओ... लाओ... लाओ... आहाहा! धर्मी को आत्मा के अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं चाहिए। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, हे मुनि! तेरे चिन्तवन से, तेरे स्वभाव के चिन्तवन से। यहाँ तो चरण-कमल लिये हैं। है न ? **तेरे चरणकमल-युगल के चिन्तन से...** अर्थात् सेवा से। उसके पास कायम रहे। **मेरा जन्म सदा सफल है।** प्रभु! आहाहा! अब मेरा जन्म नहीं है। आहाहा! अनादि काल के भव का अन्त और अनन्त काल की शान्ति उत्पन्न हुई। अनन्त काल, भूतकाल से भविष्य काल अनन्त गुना है। गत काल से भविष्य काल अनन्त गुना है तो भूतकाल के दुःख का अन्त हुआ और अतीन्द्रिय आनन्द की, धर्म की, समकित की शुरुआत हुई। आहाहा! तो सादि-अनन्त। उत्पन्न हुआ वहाँ से अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... कहीं अन्त नहीं, इतना काल सुख रहेगा। आहाहा! भूतकाल की अपेक्षा भविष्य काल अनन्त गुना है। आहाहा! तो आनन्द का काल अनन्त गुना है, दुःख के काल से; (और दुःख का काल) अनन्तवें भाग है। आहाहा!

मुनि को ऐसा कहते हैं। हे मुनिराज! गुरु को कहते हैं। आपके चरण-कमल की सेवा से, उसके चिन्तवन से मेरा जन्म सदा सफल हो गया। आहाहा! इसका अर्थ कि अपने स्वभाव की ओर के ध्यान से अपनी पहिचान कर ली कि आत्मा आनन्दकन्द सच्चिदानन्द प्रभु है। उसकी पहिचान की तो जन्म सफल हो गया। इसके बिना सब जन्म... आहाहा! यह २५१ (श्लोक पूरा हुआ)।

श्लोक-२५२

(मालिनी)

जयति सहजतेजोराशिनिर्मग्नलोकः,
स्वरसविसरपूरक्षालितांहः समन्तात्।
सहज-सम-रसेनापूर्ण-पुण्यः पुराणः,
स्वववशमनसि नित्यं सन्स्थितः शुद्धसिद्धः ।।२५२।।

(वीरछन्द)

निजरस के विस्तार पूर से अघ को जिसने धो डाला।
समतारस से पूर्ण पवित्र पुराण सुस्थित मन वाला॥
जिसका मन है सदा स्ववश, जो शुद्ध सिद्ध भगवान समान।
तेजराशि में मग्न सहज वह जीव सदा रहता जयवन्त॥२५२॥

[श्लोकार्थः] जिसने निज रस के विस्ताररूपी पूर द्वारा पापों को सर्व ओर से धो डाला है, जो सहज समतारस से पूर्ण भरा होने से पवित्र है, जो पुराण (सनातन) है, जो स्ववश मन में सदा सुस्थित है (अर्थात् जो सदा मन को—भाव को स्ववश करके विराजमान है) और जो शुद्ध सिद्ध है (अर्थात् जो शुद्ध सिद्धभगवान समान है)—ऐसा सहज तेजराशि में मग्न जीव जयवन्त है॥२५२॥

श्लोक - २५२ पर प्रवचन

---

२५२ (श्लोक)

जयति सहजतेजोराशिनिर्मग्नलोकः,
स्वरसविसरपूरक्षालितांहः समन्तात्।
सहज-सम-रसेनापूर्ण-पुण्यः पुराणः,
स्वववशमनसि नित्यं सन्स्थितः शुद्धसिद्धः ।।२५२।।

श्लोकार्थः जिसने निज रस के विस्तारूपी पूर द्वारा पापों को सर्व ओर से धो डाला है,... आहाहा! जिसने निज रस के विस्तारूपी पूर द्वारा। आहाहा! अन्तर में आनन्द का पूर भरा है। जैसे पानी का पूर आता है। पानी में पूर आता है, वैसे आत्मा में आनन्द का पूर भरा है। आहाहा! कभी सुनने को नहीं मिलता और भिखारी की भाँति पूरे दिन धन्धे में रुककर पाँच-पच्चीस लाख मिल जाए तो मानो बस, अभिमान की हूंफ चढ़ जाती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! **जिसने निज रस के विस्तारूपी पूर द्वारा पापों को सर्व ओर से धो डाला है,...** आहाहा! मार्ग यह है, ऐसा कहते हैं। गुरु जो मार्ग बताते हैं, वह यह है। दूसरा कोई क्रियाकाण्ड—दया पालो, व्रत पालो, भक्ति करो, पूजा करो, मन्दिर बनाओ तो जन्म-मरण का अन्त होगा, ऐसा नहीं है। अरबों रुपये का मन्दिर बनाओ तो राग की मन्दता होगी तो पुण्य होगा, बन्धन होगा, धर्म-बर्म होगा नहीं, जन्म-मरण का अभाव होगा नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **जिसने निज रस के...** आत्मरस, आनन्दरस। रागरस को छोड़कर, पुण्य-पाप के राग का रस छोड़कर **जिसने निज रस के विस्तारूपी पूर द्वारा...** आनन्द का विस्तार किया। आहाहा! शक्ति में तो आनन्द पड़ा है, परन्तु पर्याय में आनन्द का विस्तार किया, फैलाव किया। आहाहा! अन्तर समकितदर्शन-ज्ञान और चारित्र तीनों मिलकर विस्तार किया। आहाहा! अरे! अब ऐसी बातें।

जिसने निज रस के... अपना आनन्दरस। अतीन्द्रिय आनन्दरस, अतीन्द्रिय ज्ञानरस, अतीन्द्रिय शान्तरस से भरपूर प्रभु है। वह अपने निजरस से... आहाहा! **विस्तारूपी पूर...** विशाल पर्याय में एकाग्र हुआ तो पर्याय में विशाल आनन्द हुआ, विशाल वीर्य की स्फुरणा हुई, विशाल शान्ति हुई... आहाहा! **विस्तारूपी पूर द्वारा...** आहाहा! अपने आत्मा के आनन्द के अनुभव के पूर द्वारा। आहाहा! कितनों ने तो आत्मा नाम सुना नहीं होगा। आत्मा और होगा, आत्मा है। परन्तु कौन है, इसकी खबर नहीं होती। अन्ध के अन्ध। आहाहा! यहाँ कहीं मक्खन-बक्खन नहीं है। किसी को ठीक लगे, ऐसा बोलना- ऐसा यहाँ नहीं है। यहाँ तो आचार्य महाराज कठिन बात है, वह भी करते हैं। आहाहा! मरकर नरक में जाएगा। यदि आत्मा का भान नहीं करे और पाप करेगा तो मरकर नरक में जाएगा। वहाँ

तेरा कोई शरण नहीं है। आहाहा! तैंतीस-तैंतीस सागर (अर्थात्) असंख्य अरब, असंख्य अरब वर्ष। एक-दो बार नहीं, अनन्त बार (गया है)। आहाहा!

जिसने आत्मा में नजर की और उसका विस्तार किया। शक्ति में जो अनन्त आनन्द था, वह पर्याय में दर्शन-ज्ञान-चारित्र से, वीर्य की रचना से पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का विस्तार किया। आहाहा! विस्तार से पूर्ण भरपूर। **पूर्ण भरा होने से पवित्र है,...** आहाहा! अपनी पर्याय—दशा में अनन्त आनन्द से पूर्ण भरा है, तब सर्वज्ञ होता है। केवलज्ञान होता है, तब पूर्ण आनन्द और पूर्ण शान्ति भरी है। आहाहा! **जो पुराण (सनातन) है,...** यह सनातन चीज़ है। यह कोई नयी चीज़ नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अन्तर में से अनन्त आनन्द का विस्तार करके पूर्ण विस्तार किया, वह चीज़ कोई नयी नहीं है। अनादि की चीज़ पड़ी थी, उसे निकाली है। आहाहा! अब ऐसा उपदेश। अभी दुकान से घड़ी भर निवृत्त नहीं होता, उसे ऐसा उपदेश आहाहा!

सर्व ओर से धो डाला है,... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु के अवलम्बन से, राग-द्वेष के त्याग से, पर्याय में जो आनन्द और शान्ति का विस्तार-विशालता प्रगट हुई। अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान की विशालता प्रगट हुई। अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति, अनन्त वीर्य, अनन्त श्रद्धा... आहाहा! उसके विस्तार से **पूर्ण भरा होने से...** आहाहा! **पूर द्वारा पापों को सर्व ओर से धो डाला है,...** नाश किया है, सर्व ओर से धो डाला है। **जो सहज समतारस से पूर्ण भरा होने से पवित्र है,...** कैसा है भगवान? सहज समतारस, स्वाभाविक वीतरागभाव से भरपूर है। अरूपी भगवान अन्दर विस्तार से विशाल वीतरागभाव से भरा है। आहाहा!

समतारस से पूर्ण भरा होने से पवित्र है,... भगवान आत्मा पवित्र है। आहाहा! अपनी पर्याय के अतिरिक्त कभी अन्तर में जाने का सुना ही नहीं। आहाहा! उसे यह कहाँ से प्रगट हो? आहाहा! अनन्त-अनन्त भव दुःख में व्यतीत किये। अनन्त भव किये। अब कहते हैं, एक बार अन्दर भगवान के पास जा न! विस्तार-आनन्द, ज्ञान और शान्ति का विस्तार कर। विस्तार से पाप को धो डाल। आहाहा! **सहज समतारस से पूर्ण भरा होने से...** आत्मा तो सहज वीतराग भाव से भरा है, इसलिए पवित्र है। प्रगट पर्याय में भी वीतराग

समतारस प्रगट हुआ। जो शक्ति में था, स्वभाव में पूर्ण वीतराग पवित्रता थी, वह पर्याय में पूर्ण वीतरागता आयी। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

जो पुराण (सनातन) है,... वह तो अनादि का है। शान्ति, आनन्द अनादि की (चीज़) है। कोई नयी चीज़ नहीं है। आहाहा! **जो स्ववश मन में सदा सुस्थित है...** जो प्राणी अपने आत्मा के वश मन से सदा अन्दर सुस्थित है। आहाहा! **(अर्थात् जो सदा मन को—भाव को स्ववश करके विराजमान है)...** मन का भाव जो पर की ओर का था, उसे छोड़कर निज मन का भाव अपना आत्मा सागर-समुद्र है, वहाँ ले गया। आहाहा! इस ओर विराजमान है। स्ववश से विराजमान है। **और जो शुद्ध सिद्ध है (अर्थात् जो शुद्ध सिद्धभगवान समान है)...** 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' आहाहा! सिद्ध समान सदा पद मेरो। माहात्म्य आवे तब न! यह बाहर में माहात्म्य धूल में (पड़ा है)। आहाहा! इस शरीर की कुछ जवानी हो और स्त्री ठीक मिली हो और पाँच-पचास लाख रुपये हों। हो गया, मर गया बेचारा। जीते-जी मर गया। जो चैतन्य अन्दर सनातन है, वह नहीं, यह (संयोग) मैं। तो वह नहीं, यह मैं, इसका अर्थ इसने आत्मा को मार डाला। आहाहा! यह कहते हैं, देखो!

जो शुद्ध सिद्धसमान है। आहाहा! **ऐसा सहज तेजराशि में मग्न जीव जयवन्त है।** आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा स्वाभाविक तेजराशि - ज्ञान के प्रकाश के तेजराशि का पुंज प्रभु में मग्न, मग्न जीव जयवन्त है। उसमें मग्न रहनेवाला जयवन्त है। आहाहा! वस्तु तो वस्तु है परन्तु वस्तु में से निकालकर अपने अतीन्द्रिय आनन्द और शान्ति में जो रहता है, वह जीव जयवन्त है। वह सुखी है, वह सिद्ध हुआ। आहाहा! और वह जीव जयवन्त है। आहाहा! वह जीव जीया। उस जीव ने जीवन लिया। उस जीव का जीवन अमृतमय (हुआ)। उसने अमृतमय बनाया। अज्ञानी ने जहरमय बनाया। पुण्य-पाप में जीव के जीवन को जहरमय बनाया। इसने (ज्ञानी ने) अमृतमय बनाया। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)